**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 3; Issue 4; July 2017; Page No. 43-45**

# दहेज प्रथा और स्त्री दासता

**अर्चना सिन्हा**

Research Scholar, Sambalpur University, Orissa, India

## प्रस्तावना

'अपनी–अपनी यात्रा' शीर्षक उपन्यास में कुसुम अंसल नारी–पात्र सुरेखा द्वारा एक महत्वपूर्ण संवाद कहलवाती हैं कि "यह अपना देश कितनी भी प्रगति करे, बेटी पैदा करने वाले माँ–बाप का सिर हमेशा झुकता रहेगा। जब तक जीते रहें, बेटी की खुशी के लिए बिकते रहें।"[1] यह कथन दहेज प्रथा की समस्या की गम्भीरता को प्रकट करता है। भारतवर्ष में माता–पिता अपनी लड़की को चाहे कितना ही पढ़ा–लिखा क्यों ना लें, विवाह के अवसर पर ससुराल पक्ष से माँगी जाने वाली भारी–भरकम रकम से छुटकारा नहीं पा सकते। बेटी की नौकरी भी उन्हें दहेज देने की मजबूरी से मुक्ति की गारंटी नहीं दे सकती।

किसी समय ब्याह के मौके पर पुत्री को दी जाने वाली भेंट से शुरू हुई प्रथा आज एक विकराल समस्या बन चुकी है। विवाह के उपरांत नए स्थान, परिवेश तथा लोगों के मध्य बेटी को कष्ट ना हो, यह सोंचकर माता–पिता द्वारा सामर्थ्य अनुसार भेंट दी गई आवश्यकता की वस्तुएँ वर्तमान में दहेज का रूप लेकर हमारे समाज–संस्कृति को दूषित कर रही है। आज दहेज बेटी को नहीं, वरपक्ष को ध्यान में रखकर दिया जाता है तथा उसका उपभोग भी वे ही लोग करते हैं। कन्या का उसपर कोई अधिकार नही होता। क्षमा शर्मा लिखती हैं– "क्राइम अंगेस्ट वुमेन सेल तो है लेकिन दहेज इतना अधिक बढ़ गया है कि हर नयी तकनीक कन्यापक्ष के कंधे पर और अधिक दहेज के भूत के रूप में चढ़ जाती है। कल तक जो काम साइकिल से चलता था, आज मारूति भी नहीं चला पा रही है।"[2]

दहेज रूपी दानव की बढ़ती माँगों का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि बेटी के नन्हे कदम अभी धरती पर पड़े नहीं कि माता–पिता उसके लिए दहेज जुटाने की चिन्ता करने लगते हैं। बेटी को सयानी होते देख वे हर्षित होने की बजाय चिन्तित रहने लगते हैं। वे जानते हैं कि जितना अच्छा दहेज जुटाएँगे, उतना अच्छा दूल्हा अपनी लड़की के लिए तलाश सकते हैं। बल्कि यह कहना गलत न होगा कि दूल्हे भी अब बाज़ार में बिकने लगे हैं। बाज़ार भाव के अनुसार उनका मूल्य भी तय रहता है। डॉक्टर, इंजीनियर चाहिए तो पच्चीस लाख से कम में नही मिलेंगे। सरकारी नौकरी वाले दस लाख से अपनी बोली शुरू करते हैं तो साधारण कमाने वाले पाँच लाख से। जैसा मूल्य दो, वैसा वर पाओ। विवाह तय करने के मौके पर लड़के के परिजन उस पर किए गए खर्च का ब्यौरा देने लगते हैं मानो वह उनका कर्तव्य ना होकर लड़की के परिवार वालों पर किया गया ऐहसान हो। दूसरी ओर, लड़की की परवरिश व पढ़ाई पर किए खर्च का तो जैसे कोई मूल्य ही नहीं क्योंकि उसे तो वैसे भी विवाहोपरांत चूल्हे–चक्की में ही जुटना है।

ससुराल में स्त्री के गुण व योग्यता नहीं, उसके साथ आया सामान तथा रकम उसे सम्मान दिलाते हैं। जिस किसी के माता–पिता अच्छा दहेज देने में असमर्थ होते हैं, उस अभागन को ससुराल में रात–दिन ताने सुनने पड़ते हैं। ऐसी स्त्री को उसके अपने घर में भी बोझ समझा जाता है। बाल्यपन से ही उसकी उचित शिक्षा के विषय में कोई विचार करे ना करे, विवाह में होने वाले खर्च पर विचार–विमर्श का सिलसिला आरम्भ हो जाता है। परिजनों की चिन्ता का कारण स्वयं को जानकर लड़की मानसिक यातना को झेलती है। कभी–कभी इसीकारण से मन से न चाहते हुए भी वह विवाह के लिए तैयार हो जाती है जबकि रिश्ता उसके लिए उपयुक्त नहीं होता। अनमेल–विवाह इसी का प्रतिफलन है। ऊँची धनराशि का प्रबंध कर पाने में असमर्थ परिजन कैसे भी हो, लड़की का निबटारा करना चाहते हैं। वे ऐसे वर की तलाश करते हैं जो कम मूल्य चुकाकर मिल जाए। निम्न वर्ग तथा मध्यम वर्ग में ऐसी लड़कियों की संख्या असीमित है जिनका कि दहेज के अभाव में विवाह दुगुनी उम्र के अथवा पिता की उम्र के वयस्क से, दुहाजू से या अयोग्य व्यक्ति से कर दिया गया हो। ऐसे विवाह के तो आँकड़े भी मौजूद नहीं हैं। इसके अलावा इतने वर्षों पहले बाल–विवाह की रोकथाम के लिए बनाए गए कानून के बावजूद छुपछुपाकर हो रहे ऐसे विवाह के पीछे भी गरीब माता–पिता की लाचारी एक बड़ा कारण है। 'समाजशास्त्री भी मानते हैं कि भारत में बाल–विवाह एवं स्त्री भ्रूण हत्या के पीछे मूल रूप से दहेज की कुप्रथा है। गौरतलब है कि भारत में 8.9 प्रतिशत लड़कियाँ 13 वर्ष की उम्र से पहले ब्याह दी जाती हैं जबकि अन्य 23.5 प्रतिशत लड़कियों की शादी 15 वर्ष की आयु तक हो जाती है। जाहिर है लड़की पढ़ेगी–बढ़ेगी उतना ही उपयुक्त वर तलाशना होगा और उसके रेट के मुताबिक, दहेज जुटा पाना सबके बूते की बात नहीं है इसलिए कम उम्र की कम पढ़ी–लिखी लड़की ब्याह कर कन्यादान का पुण्य प्राप्त करना अधिकांश लोग बढ़िया मान लेते है।'[3]

विवाहोपरांत भी लोभी व अनुदार परिवार में जाकर स्त्री के कष्टों का सिलसिला समाप्त नहीं होता। पति व उसके परिवार वाले जब–तब अपनी नयी–नयी माँगे सामने रखते हैं। माँगे पूरी न होने पर स्त्री को तरह–तरह से प्रताड़ित किया जाता है। यह शोषण यहीं समाप्त नहीं होता, इसका परिणाम आगे चलकर दहेज–हत्या के रूप में सामने आता है। भारतवर्ष में हर साल अनगिनत औरतें इस निर्मम प्रथा की बलि चढ़ती हैं जिन्हें आत्महत्या की शक्ल देकर आरोपी कानूनी कार्यवाही से बच जाते हैं।'नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार वर्ष 2010 के दौरान देश में 8,391 दहेज हत्याएं दर्ज की गईं। जबकि 5,182 मामले दहेज उत्पीड़न के दर्ज हुए।'[4] विवाह असल में वर पक्ष के लिए लॉटरी का वह टिकट है जिसके द्वारा वे बड़ी सरलता से सम्पत्ति बना सकते हैं। पुनः विवाह कर वे दुबारा यह टिकट प्राप्त कर सकते हैं इसी कारण से दहेज–हत्याओं की संख्या बढ़ती जा रही है।

वास्तव में स्त्रियों की स्थिति हमारे देश में दासों की है। दासों के समान ही उसके जीवन को मूल्यहीन समझा जाता है। बेरहमी से होने वाली उसकी हत्या इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। 'अकेली स्त्रियाँ जिस प्रकार परिवारों में किसी संगठित गिरोह द्वारा नहीं कुछ गिने चुने व्यक्तियों द्वारा ('स्वजनों' द्वारा!) मार दी जाती हैं वह दास प्रथा के निकृष्टतम अवशेषों की ओर इशारा करता है। वस्तुतः स्त्री को आज भी इस आज़ाद और प्रजातांत्रिक देश में एक

नागरिक को मिलने वाली मामूली और न्यूनतम स्वतंत्रताएँ तक मयस्सर नही है। उसकी सामाजिक हैसियत आज भी पितृसत्तात्तमक ढाँचे के एक घरेलू गुलाम की है।'[5]

हमार यहाँ पितृसत्तात्तमक परिवार है जिसमें सारे अधिकार पुरूषों के पास सुरक्षित हैं। वह जैसा चाहे परिवार की स्त्री के साथ व्यवहार कर सकता है क्योंकि स्त्री की भूमिका यहाँ सहचरी की नहीं दासी की है। दासी इसलिए कि आर्थिक स्तर पर उसकी सहभागिता निम्न है। वह पूरी तरह पराश्रित है। उसके हिस्से में परम्परा ने घरेलू काम सौंपा है जिसका कोई मूल्य उसे मिलता नहीं। हाँ, उसके रहने–खाने का प्रबंध कर दिया जाता है और बदले में निर्णय लेने के सारे अधिकार छीन लिए जाते हैं। उसकी उत्पादकता समाज में निम्न होती है इसलिए उसे निकृष्ट वस्तु समझा जाता है। उसपर होने वाला अन्याय–अत्याचार इसी का प्रतिफलन है जिसे पितृसत्ता अनुचित नहीं समझती ।

स्त्री के प्रति ऐसी हीन भावना रखने वाले समाज में यदि मनमाना दहेज न मिलने पर उसे मार भी दिया जाए तो आश्चर्य कैसा? औरत यदि नौकरी करती है, कमा कर लाती है तो भी उसकी प्राथमिक भूमिका घरेलू ही मानी जाती है। अपनी कमाई को अपनी इच्छानुसार खर्च करने की स्वतंत्रता भी उसे नहीं होती। पितृसत्ता के पोषण में सहायक बनकर ही वह सुरक्षित रह सकती है इसलिए यहाँ सास–ननद भी बहू–उत्पीड़न में सहायक की भूमिका निभाती हैं। बहू या पत्नी को पारिवारिक निरंकुशता के अधीन रहना पड़ता है। जहाँ जीवनभर उसकी दासता समाप्त नहीं होती। और दासों के साथ अपनाया गया कोई भी व्यवहार जब अनुचित समझा ही नहीं जाता तो दहेज के नाम पर उत्पीड़न व हत्या को क्यों अनुचित समझा जाएगा?

यही कारण है कि नारी के प्रति हो रहे इस सामाजिक अन्याय का कोई विरोध नहीं करता। सभी इसे परिवार का निजी मामला कहकर बच निकलते हैं। कानूनी पचड़े में पड़ने के डर से तथा उससे होने वाली असुविधा का ख्याल करके कोई आगे नहीं आना चाहता। लेकिन उन्हें यह समझना आवश्यक है कि "स्त्रियाँ मानव–जाति का लगभग आधा हिस्सा हैं और पूरे वर्ग, पूरी जाति से जुड़े मसले व्यक्तिगत नहीं हुआ करते। दहेज जैसी कुप्रथाएँ करोड़ों स्त्रियों के मानवीय अस्तित्व को कुचलने और यातना मय बनाने का काम ही नहीं कर रहीं, बल्कि विवाह और परिवार जैसी सामाजिक सँस्थाओं को बुनियादी तौर पर विकृत कर रही है।" [6] इस विकृति से समाज को बचाने के लिए साधारण जन को भी आगे आना होगा।

दहेज–हत्या तथा उत्पीड़न के विरूद्ध सर्वप्रथम नारीवादी संगठनों ने आवाज़ उठाई थी। इससे पहले इसे पारिवारिक मामला समझा जाता था। परन्तु विभिन्न समाज–सेवी तथा महिला संगठनों द्वारा शुरू किए गए राष्ट्रव्यापी प्रदर्शन, धरना, नुक्कड़ नाटक इत्यादि के माध्यम से सरकार पर दबाव डाला गया कि वह इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाए। सरकार द्वारा दहेज की रोकथाम तथा दहेज आरोपियों के विरूद्ध कानून भी बनाए गए। 1961 में बने 'दहेज निर्मूलन अधिनियम' के अनुसार दहेज लेना व देना दण्डनीय अपराध माना गया तथा अपराध सिद्ध होने पर अपराधी को छः महीने कारावास के साथ 15 हजार जुर्माने का प्रावधान बनाया गया। दहेज–हत्या के मामले में भारतीय दंड संहिता–304बी तथा 498ए के अंतर्गत् तो दोषी के लिए अधिकतम सजा आजीवन कारावास ही निर्धारित कर दी गई। इसके अतिरिक्त 'वर्ष 1975 में दहेज को उत्पीड़न से जोड़कर देखा गया और दहेज को स्त्री–धन के रूप में व्याख्यायित किया गया क्योंकि महिला सशक्तिकरण की बात यदि हम करते हैं तो कोई भी सशक्तीकरण बिना प्रोपर्टी और पैसे के नहीं हो सकता। स्त्रियों की दुर्दशा का एक बड़ा कारण उनके पास सदियों से किसी भी प्रकार की चल–अचल संपत्ति का न होना रहा है। इसे बड़ी कुशलता से त्याग, तपस्या और भारतीयता की चादर के नीचे छिपा दिया गया है, इसलिए स्त्रियों को माता–पिता की सम्पत्ति में अधिकार दिया गया।'[7]

विचारणीय है कि कानूनी सुरक्षा मिलने के बावजूद क्या दहेज–हत्याएँ समाप्त हो गईं। सच्चाई तो यह है कि पिछड़े व ग्रामीण समाज में (जिसकी संख्या भारतवर्ष में अधिक है) जहाँ लोग कानून से भली–भांति परिचित नहीं हैं, वहाँ इस प्रकार की दुर्घटनाएं घटती रहती हैं जिनपर कानूनी कार्यवाही भी नहीं होती क्योंकि कोई केस दर्ज ही नहीं किया जाता। शहरों में मुकदमा चलता भी है तो कानूनी दाँव पेंच तथा खर्चे से पस्त अभिभावक इसके नतीजे तक पहुँचने से पहले ही हथियार डाल चुके होते हैं। दूसरी ओर, इस कानून के दुरूपयोग की चर्चा भी आए दिन होती रहती है। जिसे कानून की मदद चाहिए उस तक यह पहुँचती नहीं और जिसकी यह पहुँच में है उसके द्वारा निजी स्वार्थवश कानून के गलत इस्तेमाल किए जाने की खबर प्रकाश में आती है।

दहेज का लेन–देन तो शहरों में छुपछुपाकर और गाँवों में धड़ल्ले से चल ही रहा है। सारे कानून को ताक पर रखकर आज भी लड़के के परिजन दहेज लेना अपना अधिकार तो लड़की के परिजन दहेज देना अपना कर्तव्य मानते हैं। 23 दिसंबर 2009 को समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान' में 'नई रोशनी––––––नए अर्थ' शीर्षक लेख के अंतर्गत् क्षमा शर्मा ने एक महत्वपूर्ण बात उठाई थी कि "दहेज के खिलाफ जितनी बातें हुईं, शोर मचा उतना ही देखा गया कि दहेज बढ़ा। टैक्नोलोजी जितनी बढ़ी, नई जो भी उपभोक्ता वस्तुएं बाज़ार में दिखायी दीं, वे सब दहेज की माँग के रूप में सामने आईं। विवाह का आडम्बर बढ़ा। दहेज के बढ़ते स्वास्थ्य को देख कर यही लगता है कि आखिर इस देश में कन्या भ्रूण हत्या कैसे रूके। लड़की के जन्म का अर्थ यदि भारी–भरकम पूंजी का निवेश है तो आखिर उसे इस दुनिया में लाया ही क्यों जाए?"[8]

कन्या भ्रूण हत्या आज हमारे देश में एक गंभीर समस्या बन चुकी है जिसकी वजह से लिंग अनुपात में भारी गिरावट आई है। इस मानवता विरोधी कुकृत्य को बढ़ावा देने के पीछे बेटे को श्रेष्ठ मानने तथा बेटी के प्रति बरती जाने वाली संकीर्ण मानसिकता तो जिम्मेदार है ही, दहेज प्रथा भी अप्रकट रूप से कारण बनती है। दरअसल, जहाँ बेटे के जन्म का अर्थ संपत्ति में बढ़ोत्तरी के अवसर मिलना हो जबकि बेटी के आने पर धन के लुटने का भय सताए, वहाँ बेटी का जन्म लेना कोई नहीं चाहेगा। बेटे के परवरिश पर होने वाले खर्च से अभिभावक दुखी नहीं होते क्योंकि वे जानते हैं कि उनकी लगाई पूँजी व्यर्थ नहीं जाएगी। वह न केवल कमा कर लाएगा, साथ ही अच्छे ओहदे के बल पर अच्छा दहेज भी मिलेगा। इसके विपरीत बेटी पर होने वाले व्यय का भुगतान तो होगा नहीं, उल्टे उसके विवाह पर जीवनभर की जमा पूँजी भी हाँथ से निकल जाएगी। साथ ही लड़के के परिजनों द्वारा जो अपमान सहन करना पड़ेगा, सो अलग। इसी कारण से निर्धन व पिछड़े तबके में ही नहीं, धनी व शिक्षित समाज में भी कन्याभ्रूण हत्या का चलन तेजी से बढ़ा है। 25 मई 2011 को प्रकाशित हुए दैनिक समाचार–पत्र 'हिन्दुस्तान' में छपे एक लेख 'पढ़े–लिखे पैदा नहीं होने दे रहे बेटियां' में यह सच्चाई सामने आई कि '20 फीसदी धनी घरों में भ्रूण हत्या बढ़ी है––––––अनुमान है कि पिछले तीन दशकों में 42 लाख से 1.21 करोड़ कन्याओं को जन्म लेने से पूर्व ही मार दिया गया। पिछले दशक में ही अकेले 45 लाख कन्याएं जन्म से पूर्व मार दी गई।'[9]

कितनी बड़ी विडम्बना है यह कि स्त्री को जन्म से पूर्व ही मार दिया जाए क्योंकि बड़ी होकर वह माता–पिता के आर्थिक कष्ट का कारण बनेगी। कष्ट भी कैसा जिसमें उस निर्दोष की न तो सहमति होती है न ही सहयोग। दहेज प्रथा के कारोबार में वह तो उस महत्वहीन वस्तु की भांति है जिसके लिए मूल्य लेकर नहीं, देकर छुटकार पाया जाता है। दहेज यदि कन्या के परिजनों पर आर्थिक

व मानसिक बोझ है तो स्वयं स्त्री के आत्मसम्मान पर चोट। इसलिए इस कुप्रथा पर हस्तक्षेप करने की पहल भी उसे ही करनी होगी। कहीं–कहीं उसने ऐसा साहस दिखाया भी है। पहले जहाँ दहेज की माँग पूरी न होने पर बारात लौट जाया करती थी, अब यदा–कदा ऐसे भी मामले प्रकाश में आए हैं जहाँ दुल्हन ने ससुराल वालों की बढ़ती माँग से तंग आकर बारात वापस लौटा दी। हालांकि, इस दुस्साहस के बदले कुछ अन्य कटु परिणाम उसे झेलने पड़ सकते हैं। उसपर आवारा, बदचलनी या अन्य किसी से सम्बन्ध होने का संदेह किया जा सकता है। उसके विवाह में अड़चन आ सकती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसका प्रयास प्रशंसनीय नहीं। उसके परिवारवालों को भी इस प्रथा का विरोध करना चाहिए तथा लोभी व स्वार्थी परिवार में अपनी पुत्री का रिश्ता तय नहीं करना चाहिए। देने वाले जब तक देने से इंकार नहीं करेंगे, लेने वाले तो लूटने को तैयार ही मिलेंगे। तभी तो सरकार देनदारों के विरूद्ध भी कानून बनाने जा रही है।"दहेज को हतोत्साहित करने के लिए केंद्र सरकार विवाह समारोहों में होनेवाली शाहखर्ची पर अकुंश लगाने की योजना बना रही है ————–इस कानून के तहत आय के हिसाब से शादी समारोह में अधिकतम खर्च की सीमा तय हो सकती है। सीमा से ज्यादा खर्च करने पर टैक्स या जुर्माने का प्रावधान किया जा सकता है।"[10] सरकार के प्रयास जारी हैं परन्तु वह तभी सफल होगा जब जनमानस चेतेगा। युवावर्ग की सक्रियता इसके लिए आवश्यक है। युवाओं को चाहिए कि वे अपने परिवार द्वारा होने वाली निंदा का डर त्यागकर ब्याह जैसे पवित्र रिश्ते के नाम पर मोटी धनराशि एकत्र किए जाने का विरोध करें। इसी में उनका स्वयं का सम्मान तथा चेतना भी निहित है।

## संदर्भ ग्रंथ


1. डॉ. वैशाली देशपांडे, स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, विकास प्रकाशन, बर्रा, कानपुर, प्रथम संस्करणः2007 पृ0 70 ।
2. क्षमा शर्मा, औरतें और आवाज़ें, आलेख प्रकाशन, वी–8 नवीन शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005 पृ0 12।
3. राणा गौरी शंकर निबंध–'दहेज के खिलाफ जरूरी है जंग', हिन्दी नेस्ट.इन, 1अप्रेल 2006
4. दैनिक समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान', 4 मई 2012 पृ08.
5. सं.जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह,स्त्री–अस्मिताः साहित्य और विचारधारा, आनंद प्रकाशन, रवीन्द्र सरणी, कोलकाता, प्रथम संस्करणः2004 पृ0 434।
6. वही पृ0433
7. क्षमा शर्मा, औरतें और आवाज़ें, आलेख प्रकाशन, वी–8 नवीन शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2005 पृ09।
8. क्षमा शर्मा –'नई रोशनी ..... नए अर्थ', साप्ताहिक समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान रीमिक्स' 23.12.2009
9. 'पढ़े–लिखे पैदा नहीं होने दे रहे बेटियां' दैनिक समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान' 25 मई 2011 पृ0 11
10. 'हिन्दुस्तान', 4 मई 2012 पृ0 3